अगस्त १९८८ हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

बुद्ध और धर्म

(५)

किसी भी बुद्ध की शिक्षा का पहला कदम शील-सदाचार से आरंभ होता है और शील का भी पहला कदम **"पाणातिपाता वेरमणी सिक्खापदं..."** से आरंभ होता है। पहला ही शिक्षाप्रद है कि प्राणी के प्राण-हरण करने के दुष्कर्म से विरत रहें याने प्राणिहत्या से बचें। सर्वहितकारी सार्वजनीन धर्म का अहिंसामूलक यह पहला कदम ही इतना प्रभावशाली है कि इसी को पूरी तरह समझकर पाल लें तो सम्पूर्ण धर्म पाल लिया जाता है। सचमुच अहिंसा किसी भी बुद्ध की शिक्षा का प्राण है।

अहिंसा का बहुत स्थूल अर्थ है.. "जानबूझकर किसी प्राणी का हनन न करना।" यह बड़ा संक्षिप्त अर्थ है जहाँ से काम शुरू किया जाता है।

"धर्म समासतो अहिंसा वर्णयन्ति तथागताः" परन्तु इस समास को याने संक्षिप्त को ही संपूर्ण मान लेगा तो साधक भटक जायेगा। दूसरी ओर यह प्रारंभिक संक्षिप्त कदम ही नहीं उठायेगा तो धर्म के क्षेत्र में अनाड़ी (अनरियो) ही रह जायेगी।

"न तेन अरियो होति येन पाणानि हिंसति,
अहिंसा सब्ब पाणानं अरियो'ति पवुच्चति।"

किसी भी बुद्ध की शिक्षा में हिंसक ही अनार्य है और अहिंसक ही आर्य।

अहिंसा का पहला कदम उठाने के लिए कायिक संवर अनिवार्य है।

"अहिंसको ये मुनयो निच्चं कायेन संवुता" वे मुनि अहिंसक हैं जो नित्य काया में संवरशील हैं। परन्तु यदि समझदार होगा तो प्राणिहिंसा से विरत रहने के इस पहले कदम पर ही अटक कर नहीं रह जायेगा। वह खूब समझेगा कि केवल पाणातिपात ही नहीं, बल्कि काया द्वारा किया हुआ प्रत्येक कर्म जो किसी प्राणी का अहित करता है, उसे पीड़ित करता है वह हिंसा ही है। मसलन किसी अन्य व्यक्ति की वस्तु चुराना, लुटाना, छीनना, झपटना, अपनाना हिंसा ही है। शरीर से काम संबंधी मिथ्या आचरण करना हिंसा ही है। वाणी द्वारा झूठ बोलकर किसी को ठगना; कटु, कड़वी, निंदा-चुगली की वाणी बोलना हिंसा ही है। आजीविका में भी मिथ्याचरण है तो हिंसा ही है। मसलन गृहत्यागी हो और अपने गृहस्थ दायकों को अपनी सच्ची-झूठी उपलब्धियों का मिथ्या दिखावा करके उनसे लाभ-सत्कार प्राप्त करे तो हिंसा ही है। गृहस्थ है तो अपने अन्नदाता ग्राहक को खाद्यपदार्थ, दवाएँ अथवा अन्य उपभोक्ता वस्तुओं में मिलावट करके अथवा तोल, माप आदि में कमी करके ठगना हिंसा ही है। अकाल की तंगी के समय अपने धन-बल द्वारा संग्रह-संचय कर लेना और फिर लोभ के वशीभूत हो ऊंचे दामों में बेचकर उपभोक्ताओं को पीड़ित करना हिंसा ही है।

इस प्रकार की सभी कायिक और वाचिक हिंसाओं से विरत रहना किसी भी बुद्ध की अहिंसा का अगला महत्वपूर्ण कदम है। शरीर और वाणी को संयत कर किसी भी प्राणी का दिल न दुखाना अहिंसा है। किसी का अहित, अमंगल न करना अहिंसा है। परन्तु कोई व्यक्ति मन में भी किसी को पीड़ित करने का भाव जगाता है और परिणामतः किसी अन्य के प्रति दूषित चित्त की तरंगें प्रेषित करता है तो भी हिंसा ही करता है। जब जब मन में हिंसा के भाव जगाता है तो अपने आपको पीड़ित ही करता है। जो चित्त को मैला कर अपना अमंगल करे, अपने आपको पीड़ा पहुँचाए वह भी हिंसा ही करता है।

इससे बचने के लिए ध्यान साधना का मार्ग है जिससे मन पर भी संवर हो और "अविहिंसा वितर्क" याने चिंतन-मनन जनक हिंसा से भी विमुक्त हो। इसका बुद्ध की शिक्षा में गंभीर महत्व है। मन में क्रोध, दुर्भावना, ईर्ष्या, मात्सर्य, अभिमान आदि विकार जगाता है तो हिंसा ही करता है। इनसे विरत रहने के लिए मन पर संवर करता है तो अहिंसा और पुष्ट होती है। परन्तु अभी अन्तर्मन की गहराइयों में, भवंग धारा में अनेक जन्मों से सोए हुए, अनुशय-विकार कायम हैं, तृष्णा कायम है, उपादान कायम है। भीतर ही भीतर आसव का बहाव बहता रहता है तो इसे दूर करने के लिए विपश्यना साधना द्वारा उनकी उदीर्णा-निर्जरा करके, उनका क्षय करके सभी विकारों से मुक्त हो जाता है तो वीतराग अर्हंत हो जाता है। तब अहिंसा अपनी पूर्णता पर पहुंच जाती है। क्योंकि उसने केवल दृश्य प्राणी की हिंसा से विरत रहना ही नहीं सीखा, बल्कि काया का संवर करके वाणी और मन का भी संवर किया सारा मानस गहराइयों तक निर्मल हो गया। निर्मल चित्त अपने स्वभाव से मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा के उदात्त भावों से भरा रहने लगा। अब मन में कोई विकार जागता ही नहीं। चित्तधारा पर कोई विकार उदय होता ही नहीं। सही माने में अनारंभी हो गया, तो सही माने में अहिंसक हो गया। उसका संवर परिपूर्ण हुआ, उसका संवर सार्थक हो गया।

"कायेन संवुता धीरा, अथो वाचाय संवुता।
मनसा संवुता धीरा, ते वे सुपरिसंवुता॥"

काया, वाणी और मन का संवर करे तो ही कोई व्यक्ति भली प्रकार से परिपूर्ण संवर-संपन्न कहा जा सकता है।

साधक को अहिंसा का सारा क्षेत्र समझ में आता है तो इस सम्पूर्ण क्षेत्र की यात्रा पूरी करता है। क्योंकि जान गया है –

"यो च कायेन वाचाय, मनसा च न हिंसति।
स वे अहिंसको होति, यो परं न विहिंसति॥"

सचमुच ऐसा व्यक्ति ही पूर्ण अहिंसक होता है और ऐसा व्यक्ति ही –

"ये यन्ते अच्चुतं ठानं यत्थ गन्त्वा न सोचरे।"

अनित्य भंगुर इंद्रिय क्षेत्र से छुटकारा पाता हुआ उस इंद्रियातीत अवस्था का इसी जीवन में साक्षात्कार कर लेता है जो कि नित्य है, शाश्वत है, ध्रुव है, अजर है, अमर है, अविनाशी है, शिव है, अच्युत है, निर्वाण है। जहाँ पहुँचकर सारी शोक-चिंताओं से मुक्ति मिल जाती है। क्योंकि वीतरागता में पूर्ण प्रतिष्ठित हो जाता है, पूर्ण अहिंसक हो जाता है।

यों दृश्य प्राणी के प्रति मैत्री का भाव रखकर उसकी हत्या न करता हुआ अहिंसा का पहला कदम उठानेवाला मुमुक्षु दृश्य, अदृश्य, छोटे-बड़े, समीप के, दूर के, मनुष्य, मनुष्येतर सभी प्राणियों के प्रति अनंत मैत्री से आप्लावित होकर अहिंसा की पूर्णता को प्राप्त कर लेता है। शुद्ध धर्म की पूर्णता को प्राप्त कर लेता है। ऐसा पूर्ण अहिंसक व्यक्ति किसी जाति, कुल, वर्ण, गोत्र, संप्रदाय व देश-काल का हो, पूर्ण धर्मिष्ठ ही होता है।

साधकों! ऐसे ही धर्मिष्ठ बनें! जातीयता, सांप्रदायिकता की जंजीरों से मुक्त होकर सच्चे धर्मिष्ठ बनें और अपना कल्याण साध लें!

कल्याण मित्र,
स.ना.गो.